

विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P6 : हिन्दी गद्य साहित्य : कथा साहित्य
इकाई सं. एवं शीर्षक	M25 : पत्नी
इकाई टैग	HND_P6_M25
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र-संयोजक	प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
इकाई-लेखक	प्रो. रोहिणी अग्रवाल
इकाई-समीक्षक	प्रो. गंगाप्रसाद विमल
भाषा-सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. कहानी का कथासार
3. कहानी के पात्र
4. कहानी का उद्देश्य
5. शिल्प
6. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- पत्नी कहानी का कथासार जान पाएँगे।
- कहानी के चरित्रों के बारे में समझ पाएँगे।
- पत्नी कहानी के उद्देश्य को समझ पाएँगे।

2. कहानी का कथासार

पत्नी कहानी पति कालिन्दीचरण के भोजन की प्रतीक्षा में अस्त-व्यस्त सामान्य स्त्री की सामान्य दिनचर्या का आख्यान नहीं है, व्यवस्था द्वारा एक भरी-पूरी शक्सियत को प्रतीक्षा और जड़ता के दो खूणों से बाँध कर बधिया कर दिए जाने की पड़ताल है। उल्लेखनीय है कि बधिया कर दिए जाने का क्षोभ मौन हाहाकार बन कर कहानी की नायिका सुनन्दा को जब-तब जकड़ लेता है। तब वह 'भीतर ही भीतर गुस्से से घुट कर रह' जाती है, या पति का जी दुखाने के लिए उसकी उपस्थिति का नोटिस न लेकर 'कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती रहती' है; या 'हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक' देना चाहती है ताकि बता सके कि 'किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं' है। लेकिन इस सारे मानसिक ऊहापोह के बाद अपने में लौटने पर पाती है कि वह 'जहाँ थी, वहाँ' अब भी है— गीली लकड़ी की तरह धुँआती हुई या अंगीठी की आग की तरह राख हुई जाती हुई। इस प्रकार पत्नी सुनन्दा अन्तर्मन की तमाम डर और व्यथा से जूझती हुई एक आदर्श पत्नी के रूप में सहज स्वीकार हो जाती है।

3. कहानी के पात्र

पत्नी कहानी में मुख्य पात्रों के रूप में पत्नी सुनन्दा और पति कालिन्दीचरण हैं। अन्य पात्रों के रूप में कालिन्दी के तीन मित्रों की चर्चा हुई है। कहानी में घटनाओं की न्यूनता, स्थितियों की गतिहीनता एवं पात्रों के विकास की सम्भावनाओं का अभाव जैनेन्द्रकुमार की कहानी-कला की कुछ विशेषताएँ हैं जो कहानी में स्फूर्ति, उत्साह और आशा जैसी सकारात्मक चटखदार रेखाओं को उभरने नहीं देतीं। लेखक व्यक्ति की मनःस्थितियों के जरिए सामाजिक विडम्बनाओं और पाखण्ड का उद्घाटन करते हैं और इस प्रक्रिया में पात्र के अन्तर्द्वन्द्व या दो पात्रों को आमने-सामने रख कर कहानी को खुद अपनी यात्रा तय करने का अवसर देते हैं। पत्नी कहानी में जैनेन्द्रकुमार एक-दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता में तन कर खड़े दो विरोधी पात्रों या स्थितियों को नहीं गढ़ते, बल्कि उनकी संवादहीनता के भीतर बोलती चुप्पियों के जरिए उनके मानसिक गठन को उद्घासित करते हैं। अपनी नित्यक्रमिकता को यान्त्रिक भाव से जीती सुनन्दा कहानी में शुरु से अन्त तक अवरुद्ध कर दी गई लहर के बिम्ब की सृष्टि करती है, मानो लेखक कहना चाह रहा हो कि जीवन की गत्यात्मकता के भीतर जीवन का क्षरण करने वाली स्थितियों को चीन्हने के लिए हमें स्वयं उनके भीतर उतरना होगा। इस अवरुद्ध लहर के ध्रुवान्तर पर है कालिन्दीचरण जो मित्र-मण्डली के साथ हवा के झोंके की मानिन्द घर और समाज में बेरोक-टोक मनचाही गति और समय के साथ घूमता है। उसके पास संवारने को संघर्ष-संकुल वर्तमान है, और विचरण के लिए भविष्य का आसमान। सुनन्दा के पास न वर्तमान है, न भविष्य। बस, उसकी थाती है अतीत। पुत्र की अकाल मृत्यु के कारण चोट खाया, बिलबिलाती स्मृतियों से भरा अतीत। यह अतीत उसे खाली देखते ही गहरे सख्य भाव से बतियाने हेतु उसके पास आ पहुँचता है। लेकिन दोनों जैसे ही मिल-बैठ कर साझा भाव से अपने-अपने जखम चाटने लगते हैं, सुनन्दा अश्रुपूरित नेत्र लिए उसे जहाँ का तहाँ छोड़ वर्तमान में लौट

आती है। वह जानती है कि वर्तमान का स्वामी उसका पति कालिन्दीचरण है और वह स्वयं उसकी छाया या अनुगूँज। वर्तमान उसे पलायन की जमीन देता है क्योंकि यहाँ उसे विचारशून्य सेवादारिन की भूमिका निभानी है।

सुनन्दा पाठक के भीतर गहरे भावोद्वेलन की सृष्टि करती है, लेकिन लेखक उसके चरित्र की बारीक परतों को एक निश्चित अन्तराल में उठने वाली परस्पर विरोधी विचार-लहरियों के जरिए बुनता-उकेरता है। एक ओर किसी भी सामान्य स्त्री की तरह सतीत्व उसकी पूँजी है और पति-सेवा उसका सौभाग्य। यही उसके दायित्व की जमीन है और सपनों का आसमान भी। मन में उठती टीस और हुलसते अरमान-दोनों की 'भूर्णहत्या' करने के लिए वह किसी न किसी 'व्यस्तता' की तलाश में अपने स्वत्व और ऊर्जा को क्षरित करती चलती है। लेकिन इसके बावजूद पढ़-लिख कर भारतमाता को स्वतन्त्र कराने जैसे 'बड़े' और 'पुरुषोचित' मुद्दों को समझने की ललक सुनन्दा को निरी छाया या अनुगूँज नहीं रहने देती। उसमें अपनी कमतरी पर ग्लानि है तो उसी साँस में कमतर बनाए रखने वाले घटकों की शिनाख्त की तमीज भी। "उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करें। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी? सोचती है, कम पढ़ी हूँ तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ, लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है।" आत्मविस्मरण से आत्मान्वेषण की उत्कण्ठा के बीच निरन्तर दोलायमान सुनन्दा की विचार-यात्रा दरअसल यथास्थितिवाद के अभिशाप से उबरने के लिए स्पेस पाने की चाहत है जिसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रतिनिधि पुरुष/पति कालिन्दीचरण ने पूरी तरह घेर लिया है। 'माथे को उंगलियों पर टिका कर', 'बैठी-बैठी सूनी सी' अदृश्य को ताकती सुनन्दा ऊपरी तौर पर लकड़ी के कुन्दे सी ठस्स भले ही दीखती हो, वक्त से पिछड़ने की पराजय ने उसके भीतर क्षीणकाय संघर्ष-चेतना अवश्य भरी है। बेशक "उत्साह उसके लिए अपरिचित है" और "जीवन की हौंस उसमें बुझती जा रही है", पर फिर भी वह 'जीना चाहती है'—रेंग-रेंग कर नहीं, पति के साथ कंधे से कंधा मिला कर भारतमाता की स्वतन्त्रता के यज्ञ में आहुति डाल कर।

जैनेन्द्रकुमार अपने पात्रों का एकरेखीय विकास नहीं करते। पहले वे प्रयासपूर्वक अपने पात्रों को एक खास गढ़त देते हैं और जैसे ही अपनी विशिष्ट पहचान के साथ वे पाठक के मस्तिष्क में अंकित होने लगते हैं, लेखक तुरन्त उन्हें ही उनका विलोम बना कर प्रस्तुत कर देता है। उल्लेखनीय है कि अपनी ही पूर्व-मान्यता के विपरीत आकर ये पात्र अपने को झुठलाते नहीं, बल्कि अन्तर्विरोधों के जरिए व्यवस्था के साथ अपने द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध के सत्य का बखान कर जाते हैं। सुनन्दा द्वारा पति की भूख की चिन्ता, देर दोपहर मित्रों के साथ घर पहुँचे पति को खाना खिलाने की तत्परता में अपने लिए कुछ भी बचा कर न रखना, फिर मान से भर आना कि उन्होंने एक बार झूठे भी उसकी भूख की फिक्र नहीं की और अन्त में आत्मधिकार के जरिए आत्मोद्धोधन की जुगत – "छिः! सुनन्दा, तुझे ऐसी जरा सी बात का अब तक ख्याल होता है। तुझे खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला।" यह वह स्थल है जहाँ पुण्य लूटने के फुसलावे 'भूख' और उससे अविच्छिन्न भाव से जुड़े स्वाभिमान की तीव्रता को ढाँप नहीं पाते। यह जैनेन्द्रकुमार द्वारा सुनन्दा की चुप्पियों से बुना गया माँग-पत्र है जो सुनन्दा (रूढ़ स्त्री छवि) के भीतर अंकुआती नई स्त्री के जन्म लेने की पूर्व-घोषणा है।

4. कहानी का उद्देश्य

सुनीता और त्यागपत्र उपन्यासों की तरह पत्नी कहानी भी जैनेन्द्र कुमार की कालजयी रचना मानी जाती है। मौन और मितव्ययिता के धनी जैनेन्द्रकुमार स्त्री-मन के चितेरे हैं। दबे पाँव स्त्री के अन्तस् में गहरी पैठ बनाते हुए वे न केवल उसकी

दमित आकाँक्षाओं और क्षत-विक्षत सपनों को सतह पर लाते हैं, बल्कि

बेहद अनायास भाव से स्त्री को स्त्री (हीन एवं शून्य) बनाने वाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था के हृदयहीन चरित्र को भी प्रकाश में ले आते हैं। जैनेन्द्रकुमार प्रेमचन्द के विलोम हैं। वे स्त्री के जीवन को यातनापूर्ण बनाने वाली सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार नहीं करते, स्त्री की मानसिकता को कुण्ठित करने वाली संस्कारग्रस्तता पर चोट करते हैं। इसलिए वे प्रेमचन्द और प्रसाद की तरह स्त्री को पुरुष के प्रभामण्डल में घेर कर स्त्री-मुक्ति की बात नहीं करते, वरन् पहले एक परतन्त्र लैंगिक इकाई के रूप में स्त्री की व्यक्तित्वहीनता को उभारते हैं, और फिर तदनुरूप यथास्थितिवाद से जूझने का आक्रोश पाठक के भीतर भरते हैं।

जैनेन्द्रकुमार की विशेषता है कि आत्मसंकोच और दीनता में दुबकी-सिमटी सुनन्दा को दयनीयता में डाल कर विघटित नहीं करते, उसमें सेवा, त्याग, नैतिकता का बल गूँध कर आक्रान्ता सरीखे कालिन्दीचरण के सामने खड़ा कर देते हैं। निश्चय ही यह शेर और मेमने की लड़ाई है। सुनन्दा के पास आत्म-बलिदान के तेज से परिपूर्ण आत्मबल है तो कालिन्दीचरण के पास पुरुष होने के दम्भ से उपजा अहं भाव। एक ओर अपने मान की रक्षा की मूक भिन्नता है, दूसरी ओर सब कोमल चकनाचूर कर देने की उद्धत लापरवाही। दोनों ओर बिना कहे अपने को समझे जाने की चाहतें हैं, और दोनों ओर समझबूझ कर भी अनजान बने रहने की भंगिमाएँ हैं। सम्भवतया इसलिए कि बरसों से पसरी संवादहीनता सम्बन्ध को कुतरते-कुतरते दो व्यक्तियों को परस्पर अजनबी बना देती है। पति के पास यदि क्रुद्ध होकर बाहरी दुनिया में जा रमने का विकल्प है तो पत्नी के पास और अधिक कड़ाई से अपने दायित्व को निभाए चलने की विकल्पहीनता। अलवृत्ता खाना न परोसने के हुक्म का उल्लंघन करते हुए वह खाना परोसने के साथ-साथ अपने आहत अभिमान को भी अनबोले ठसके के साथ परोस आती है। लेकिन यह क्षणिक उत्तेजना की तात्कालिक प्रतिक्रिया भर है। अपने-अपने खँचों में बन्धे सुनन्दा और कालिन्दीचरण जानते हैं कि स्त्री की कमजोरी ही पुरुष की ताकत है। इसलिए आँख में आँख डाल कर पंजा लड़ाने की यह क्षणिक प्रक्रिया अन्ततः पति-पत्नी की समाजानुमोदित भूमिकाओं की पारम्परिक लय-ताल में विलीन हो जाती है, जहाँ अपनी छोटी से छोटी जरूरत की पूर्ति के लिए हाँक लगा कर पत्नी को हड़का देने के विशेषाधिकार हैं तो दूसरी ओर अपनी भूख और जरूरतों को मुलतवी कर पति के लिए जान की बाजी लगा देने की दीनता। लेकिन जैनेन्द्रकुमार का लक्ष्य ऊबड़खाबड़ जमीन पर स्थित दाम्पत्य सम्बन्ध की कथा कहना नहीं है। वे इस तथ्य की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि सृष्टि के विकास-क्रम को निरन्तर बनाए रखने के लिए स्त्री और पुरुष की दो पूरक इकाइयाँ कैसे समाज व्यवस्था के हृत्थे चढ़ कर एक-दूसरे की प्रतिद्वन्द्विता में तनी दो लैंगिक इकाइयाँ बन जाती हैं। चूँकि एक पक्ष को श्रेष्ठ अथवा कर्त्ता मानते ही अपने आप दूसरा पक्ष हीन और अनुकर्त्ता की भूमिका में आ विराजता है, इसलिए दमनकारी तन्त्र में सहभागिता की बात बेमानी हो जाती है। यह व्यवस्था के आन्तरिकीकरण की मनोवृत्ति ही है कि सुबह के उपासे पति की प्रतीक्षा में अंगीठी की आग लहका कर बैठी सुनन्दा की चिन्ता और चेतना में पति की भूख ही जब-तब आ विराजती है, अपनी नहीं। “कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए”- खीझ में वात्सल्य भर कर सुनन्दा सोचती है तो उसकी सोच में ‘आदमी’ यानी कालिन्दीचरण ही है, अपनी आदमियत नहीं। यह स्त्री द्वारा अपनी देह (अस्तित्व) को नकार कर स्वत्वहीन हो उठने का संस्कार है जो देह के भीतर स्थित दिमाग और देह पर आच्छादित व्यक्तित्व दोनों से पिण्ड छुड़ाने के अभ्यास में उभरता है। लेखक ने एकाधिक बार सुनन्दा को अपनी देह के प्रति असावधान दिखाया है और कालिन्दीचरण की देह के प्रति ममत्वपूर्ण, मानो देह जैविक संरचना न होकर ठोस व्यक्तित्व हो। “उन्हें न खाने की फिक्र है, न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर

अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए”- सुनन्दा की यह आत्म-दीनता

एक ऐसी स्त्री-छवि की रचना करती है जो चोट खाकर आत्माभिमान में फुफकार उठती है और फिर आत्मपीड़न में डल जाती है। इसके विपरीत देह के स्वीकार के साथ अनिवार्य रूप से व्यक्तित्व के स्वीकार और संवार का भाव व्यक्ति में पनपता है जो स्वाभिमान के सहारे अपनी परिधि का विस्तार करता चलता है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था की बुनियादी संरचना को मूर्त रूप देने के लिए जैनेन्द्रकुमार स्त्री और पुरुष को विलोम-द्वित्व में चित्रित करते हैं। सुनन्दा के चरित्र की गढ़त जहाँ उन्होंने स्त्री की चुप्पियों के महीन रेशमी तन्तुओं से की है, वहीं कालिन्दीचरण के व्यक्तित्व की रचना में पुरुष का बड़बोलापन अपनी खोखली अनुगूँजों के साथ सक्रिय हुआ है। जैनेन्द्रकुमार की विशेषता है कि वे अपने दोनों पात्रों को स्वतन्त्र रूप से रचते भी हैं और एक-दूसरे के सन्दर्भ में उनका उपयोग करते हुए उन्हें रूढ़ छवि में बान्धते भी हैं। सुनन्दा की चुप्पी, दीनता और तरलता जितना सुनन्दा के व्यक्तित्व को रचती है, उतना ही कालिन्दीचरण की हिंसक आक्रामकता और अहम्मन्यता को उभारती है। सुनन्दा को लेखक ने करुणा की जमीन पर खड़ा कर सहानुभूति से रचा है, जबकि कालिन्दीचरण के लिए उनके पास व्यंग्य और उपहास है। कालिन्दीचरण अपने “दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश का काम करते हैं”- यों कालिन्दीचरण का प्रथम परिचय देकर जैनेन्द्रकुमार उसे जरा ऊँचे धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं ताकि उसकी कमजोरियों को उतने ही ‘मैग्रीट्यूड’ के साथ अभिव्यक्त किया जा सके। बड़ी-बड़ी रणनीतियाँ बनाना, सिद्धान्त और आदर्श की बातें करना, राष्ट्र के लिए आत्मोत्सर्ग के दावे करना कालिन्दीचरण सरीखे हर पुरुष का वास्तविक परिचय है जो घर को क्षुद्र समझ कर हर गार्हस्थिक दायित्वों की हेठी करता है। कथनी और करनी के बीच की खाई में आत्मप्रवृत्त पुरुष की मरीचिकाएँ छुपी हैं। लेखक ने कालिन्दीचरण के मिशन (संकल्प) और कार्यशैली दोनों पर तंज कसते हुए उसे आड़े हाथों लिया है। कालिन्दीचरण का मिशन है भारतमाता को स्वतन्त्र कराना। बेशक जैनेन्द्रकुमार के युग में स्वतन्त्रता-सेनानी देश को ‘भारतमाता’ के प्रतीक में अभिव्यक्त कर सिर-धड़ की बाजी लगाते थे, लेकिन राष्ट्र और कालिन्दीचरण के बीच सुनन्दा को खड़ा कर मानो लेखक जंजीरों से जकड़े भारतमाता के चित्र में अर्गलाओं से बन्धी औसत स्त्री की विभीषिका को आरोपित कर देते हैं। तब ‘बिटविन द लाइंस’ उठने वाले सवालों को अनसुना करना सरल नहीं रह जाता कि क्या घर-घर में सुनन्दा सरीखी श्रृंखलाबद्ध स्त्री को स्वतन्त्र किए बिना राष्ट्रीय मुक्ति सम्भव होगी? या कि अंग्रेज हाकिमों को खदेड़ दिए जाने से ही क्या स्वतन्त्रता हासिल की जा सकती है? सरकार बदलने से राजनीतिक स्वतन्त्रता भले ही पा ली जाए, मानसिक-सामाजिक-सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के बिना क्या उसे एक नई शुरुआत का बिन्दु माना जा सकता है? सुनन्दा धाराप्रवाह भाषण के दौरान पति के मुंह से निकले शब्दों – भारतमाता, स्वतन्त्रता, सरकार, हाकिम – के अर्थ को गुनना चाहती है, लेकिन पाती है कि उसे “न भारतमाता समझ में आती है, न स्वतन्त्रता समझ में आती है।” जहाँ तक कालिन्दीचरण का सवाल है, उसके पास इन शब्दों के भीतर स्थित अर्थगर्भी संकल्पनाओं पर विचार करने का अवकाश नहीं। यदि अवकाश होता तो पहले वह भारतमाता की बेटियों को स्वतन्त्र कराने का सामूहिक अभियान चलाता, और फिर स्वतन्त्रता की आभा से दीप्त भारतमाता की वे बेटियाँ एक प्रगाढ़ जिम्मेदारी के भाव से अपनी माँ को स्वतन्त्र कराने के संयुक्त अभियान में निकलतीं। सामने खड़े अवरोधों से बच कर किन्हीं अमूर्त महत्तर उद्देश्यों के लिए जान कुर्बान कर देने की बदहवासी कालिन्दीचरण और उसके युग की पहचान है। ठीक इसी स्थल पर सुनन्दा की खाली-खाली व्यस्तताओं के समानान्तर लेखक कालिन्दीचरण की कागजी व्यस्तताओं की पोल भी खोल देते हैं। चूँकि लेखक स्वयं स्वतन्त्रता-सेनानी रहे हैं और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इस

महा आन्दोलन में स्त्रियों की स्वाधीनता को भी समान महत्त्व देते रहे हैं, इसलिए घर की स्त्री को बन्दी बनाए रख कर बाहर की महत्तर अमूर्तताओं के पीछे भागते कालिन्दीचरण को श्रद्धा और सहानुभूति नहीं दे पाते। वे कालिन्दीचरण के मुँह से जिन शब्दों को कहलवाते हैं, वे बूमरैंग की तरह पलटवार कर उसी को कठघरे में खड़ा कर जाते हैं। बहस के दौरान कालिन्दीचरण दृढ़ शब्दों में कहता है, “सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठ कर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं। जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने उसमें कर्तव्य भावना का प्रकाश जगाने का है।” सुनन्दा नहीं जानती ‘सरकार क्या होती है’, लेकिन पाठक तुरन्त जान जाता है कि सरकार सत्ता का वह तन्त्र है जो चित और पट के खेल में हमेशा हर तिकड़म के साथ जीतने का मूलमंत्र अपने पास सुरक्षित रखता है। भारतमाता के सन्दर्भ में सरकार का अर्थ यदि अंग्रेज हाकिमों का वर्चस्व है तो सुनन्दा के सन्दर्भ में पितृसत्तात्मक व्यवस्था सरकार का रूप धर लेती है जिसने कालिन्दीचरण को हाकिम बना कर अपनी ताकत उसके भीतर भर दी है। जाहिर है शक्ति का ‘मद उतारने’ और ‘उसमें कर्तव्य भावना का प्रकाश जगाने’ का दायित्व सुनन्दा सरीखे व्यवस्था के उत्पीड़ितों को ही लेना होगा जो न मानवीय इकाई के रूप में अपनी अस्मिता और ताकत को पहचानते हैं, और न ही राजनीतिक चेतना से संपन्न होकर किसी लक्ष्योन्मुख लड़ाई की रणनीतियाँ बना सकते हैं।

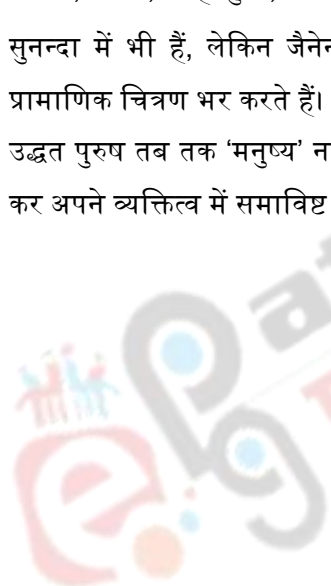
5. शिल्प

कालिन्दीचरण की कार्यशैली पर लेखक ने प्रत्यक्षतया कोई टिप्पणी नहीं की है, लेकिन टकराव (सुनन्दा का सत्याग्रह) की अप्रत्याशित स्थिति में पड़ कर वह जिस प्रकार अपने पूर्ववर्ती स्टैण्ड से बिल्कुल उलट नई दिशा ग्रहण करता है, वह उसकी संयमहीनता, विवेकशीलता के अभाव, अहम्मन्यता और अपरिपक्व दृष्टि का ही सूचक है। कालिन्दीचरण गर्म दल की राजनीति का प्रशंसक नहीं है। कार्य सिद्धि हेतु हिंसा के जरिए आतंक फैलाना उसकी दृष्टि में बुद्धिहीनता और विवेकशून्यता का ही निदर्शन करता है। वह मानता है कि “आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं।” इससे जान पड़ता है आतंक की अपेक्षा धैर्यपूर्वक बुद्धि को जाग्रत एवं विकसित करना उसकी कार्यशैली का अहम हिस्सा है। लेकिन तभी लेखक पाठक की स्मृति में सुनन्दा की आत्मस्वीकृति और आत्म-ग्लानि को ठेल देता है जब वह खेदपूर्वक स्वीकार करती है कि इस उम्र में भी पढ़-लिख कर वह ‘देश’ को जानना चाहती है, लेकिन इतनी मूढ़मती है कि उसकी बुद्धि का विकास करने में ‘पति का धीरज खो जाता है’ पाठक की स्मृति को चमकाते हुए लेखक कालिन्दीचरण पर घड़ों पानी उण्डेल कर ही सन्तुष्ट नहीं है, बल्कि उसे पूरी तरह से आतंकवादी गतिविधियों का हिमायती बना देता है। सुनन्दा की बीन्धती हुई मुखर चुप्पी ने उसे आहत कर दिया है क्योंकि अपने गार्हस्थिक दायित्वों की अवहेलना और पत्नी की निरन्तर उपेक्षा करते रहने की प्रवृत्ति ने उसके भीतर सोए अपराध-बोध को जगा दिया है। वह चाहता तो संयम, धीरज, विवेक और सदय दृष्टि के साथ अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाकर पत्नी-वत्सल स्नेही पति की भूमिका में आ सकता था, लेकिन उसकी विस्तीर्ण अहम्मन्यता अपने दोषों का परिहार करने की अपेक्षा दोष दिखा देने वाले व्यक्ति के विरुद्ध ग्रन्थि पालने लगती है। “हाँ, आतंक जरूरी भी है” – यह उसकी कार्य-योजना का एक चरण भर नहीं है, उसके चरित्र की मूलभूत प्रवृत्ति भी है जो सुनन्दा के अस्तित्व के साथ-साथ स्वयं उसकी

मनुष्यता को भी जकड़े हुए है। ठीक यही समझ आने लगता है कि क्यों सुनन्दा के लिए उत्साह “दूर की वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली”, और क्यों वह पति की “राह के बीच आने की नहीं सोचती।”

6. निष्कर्ष

जैनेन्द्र कुमार की विशेषता है कि कामधेनु गाय की तरह एक पुकार की दूरी पर “कमरे के बाहर दीवार से लग कर खड़ी” इस स्त्री की घुटन और आकाँक्षा के जरिए उन्होंने घर-घर अदृश्य कर दी गई ‘सुनन्दाओं’ को न केवल दृश्यमान किया है, बल्कि पाठक के भीतर यह समझने का बोध भी पैदा किया है कि राष्ट्रोद्धार के कार्यक्रम घर की चौखट से बाहर नहीं, घर के भीतर ही सबसे पहले क्रियान्वित किए जाने चाहिए। प्रेमचन्द अपनी रचनाओं में जिन स्त्रियोचित गुणों – प्रेम, त्याग, दया, ममता, संयम, सहिष्णुता, क्षमा, औदार्य, विश्वास आदि आदि – का बखान कर स्त्री को अभिषिक्त करते हैं, वे सब गुण सुनन्दा में भी हैं, लेकिन जैनेन्द्रकुमार इन गुणों की धारक स्त्री को श्रद्धा का अग्र्य नहीं देते, उसकी दारुण दशा का प्रामाणिक चित्रण भर करते हैं। अलबत्ता इन गुणों से न्यून कालिन्दीचरण की परिकल्पना कर मानो वे कह देना चाहते हैं कि उद्धत पुरुष तब तक ‘मनुष्य’ नहीं बन पाएगा, जब तक मनुष्योचित कहे जाने वाले इन गुणों को लैंगिक विभाजन से मुक्त कर अपने व्यक्तित्व में समाविष्ट नहीं कर लेगा।

 **पाठशाला**
A Gateway to All Post Graduate Courses